International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 73-76

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 73-76
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-05-2017
Accepted: 14-06-2017

महेश दत्त शर्मा
(शोधच्छात्र), संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

Correspondence
महेश दत्त शर्मा
(शोधच्छात्र), संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

अभिराजयशोभूषणम् में अलंकार तत्त्व विमर्श

महेश दत्त शर्मा

सारांश
शब्द एवं अर्थ का आश्रय लेकर जो काव्य की शोभा का संवर्धन करते हैं हारादि के समान वे अनुप्रास एवं उपमादि अलंकार कहे जाते हैं। जैसे अभिराजयशोभूषणम् के अलंकार प्रकरण में कहा भी गया है कि

शब्दार्थसंश्रिता ये वै काव्यशोभां प्रतन्वते।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।

उनमें भी शब्द का आश्रय लेने वाले यमकादि शब्दालंकार हैं तथा उसी प्रकार अर्थाश्रित उपमादि अर्थालंकार हैं। सर्वप्रथम महामुनि भरत द्वारा चार ही अलंकारों का वर्णन मिलता है, परन्तु आगे चलकर अप्पय प्रणीत कुवलयानन्द में अलंकारों की संख्या सौ से भी अधिक हो गई। पहले भी यह अलंकार आचार्यों द्वारा अपनी रूचि एवं इच्छा के ही अनुसार विविध रूपों में कल्पित किये गये। ठीक उसी प्रकार आज भी ये अलंकार नये नये रूपों में कल्पित किये जा रहे हैं। जिससे अलंकारो के भेदोपभेदों में उत्तरोत्तर वृद्धि दिखाई पडती है। भामह, दण्डी, रुद्रट, मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ, जयदेव, अप्पयदीक्षित तथा पण्डितराज आदि के ग्रन्थों में इन अलंकारों का सर्वसम्मत विभाजन शब्दालंकार एवं अर्थालंकार के रूप में किया गया है।
संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में अर्वाचीन संस्कृत आचार्यों ने जिस प्रकार अलंकारों का विवेचन किया है वह सहृदयों को आनन्दित करने वाला तथा नूतन प्रयास है। इसी शृंखला में प्रो. अभिराजराजेन्द्र मिश्र प्रणीत अभिराजयशोभूषणम् में भी शब्दालंकार तथा अर्थालंकार इन द्विविध अलंकारों का विवेचन किया गया है।

कूट शब्दः निदर्शना, विच्छित्ति, अभंगश्लेष, संघटक, व्याजस्तुति, कारणमाला, पौनरुक्त्य, हैयग्वीना, विषमूर्छित, कापिशायनी, मलयमारुत, अद्यापिलहरी।

प्रस्तावना

अलंकारशास्त्र का परिचय

संस्कृत काव्यशास्त्र की वेदमूलकता पर प्रकाश डालते हुए ''अरंकृति'' शब्द की व्याख्या की गई है जो ''अलंकृति'' से अभिन्न है तथा वेदमन्त्रों में बहुशः उपलब्ध होता है। महर्षि पाणिनि ने भी अष्टाध्यायी में कतिपय अलंकार संघटक पदावलियों की व्याख्या की है।
अलंकारों का सर्वप्रथम विवेचन नाट्यशास्त्रकार भरत ने किया। जैसा कि उन्होंने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में कहा भी है कि –

उपमा दीपकं चैव रूपकं यमकं तथा।
काव्यस्यैते ह्यलंकाराश्चत्वारः परिकीर्तिताः।।[1]

नाट्यशास्त्रकार महामुनि भरत द्वारा प्रारम्भ में चार ही अलंकार उपकल्पित किये गये थे परन्तु वे ही चार अलंकार अप्पय प्रणीत ''कुवलयानन्द'' में सौ से भी अधिक हो गये। तदनन्तर भामह तथा दण्डी ने भी लगभग 38 – 38 अलंकार माने हैं। उद्भट ने 41, वामन ने 31, आचार्य रुद्रट ने वास्तव, औपम्य, अतिशय तथा श्लेष नामक चार वर्गों में अलंकारों को व्यवस्थापित कर लगभग 66 अलंकारों को निरुपित किया, मम्मट ने 67, ''चन्द्रालोककार'' जयदेव ने 100, तदनन्तर अलंकारसर्वस्वकार आचार्य रुय्यक ने सादृश्य, विशेष, गम्यार्थ, विरोध, शृङ्खला, न्याय, गूढार्थ, एवं विच्छित्ति को दृष्टि में रख कर तन्मूलक अलंकारों की पृथक् स्थापना की।

अलंकारों की अग्रिम विकास परम्परा में विश्वनाथ,[2] पण्डितराज तथा अप्पयदीक्षित आदि आचार्यों के नाम आते हैं। तथा इनके ग्रन्थों में इन अलंकारों की संख्या क्रमशः बढते – बढते 125 तक जा पहुंची है।

अर्वाचीन अलंकारवादी

अर्वाचीन संस्कृत आचार्यों में ''काव्यालंकारकारिका'' के प्रणेता रेवाप्रसाद द्विवेदी, ''अभिराजयशोभूषणम्'' के रचयिता आचार्य अभिराजराजेन्द्र मिश्र तथा''अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्'' के प्रणेता प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने जिस प्रकार अलंकारों का विवेचन किया है वह सहृदयों को आनन्दित करने वाला तथा एक नूतन प्रयास है। आचार्य अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने द्विविध विभाजन के साथ नवीन अलंकारों को दृष्टिगोचर में रखा है। जैसा कि वे कहते भी हैं कि शब्द एवं अर्थ का आश्रय लेकर जो काव्य की शोभा का संवर्धन करते हैं हारादि के समान वे अनुप्रास एवं उपमादि अलंकार कहे जाते हैं। जैसा कि अभिराजयशोभूषणम् के अलंकार प्रकरण में वर्णित भी है कि – शब्द का आश्रय लेने वाले यमकादि शब्दालंकार हैं तथा उसी प्रकार अर्थाश्रित उपमादि अर्थालंकार हैं [3] । जो अधोलिखित हैं –

1. शब्दालंकारः इसमें प्रमुख रूप से पुनरुक्तवदाभास, अनुप्रास, लाटानुप्रास, यमक, वक्रोक्ति, श्लेष, तथा अभंगश्लेषादि आते हैं।

2. अर्थालंकारः अभिराजयशोभूषणम् में लगभग 44 अर्थालंकारों का वर्णन किया गया है। जो निम्नलिखित हैं –

1.उपमा	2.पूर्णोपमा	3.रशनोपमा	4.मालोपमा	5.अनन्वय
6.उपमेयोपमा	7.स्मरण	8.रूपक	9.सन्देह	10.व्याजस्तुति
11.भ्रान्तिमान	12.उल्लेख	13.अपह्नुति	14.निश्चय	15.उत्प्रेक्षा
16.अतिशयोक्ति	17.तुल्योगिता	18.दीपक	19.प्रतिवस्तूपमा	20.दृष्टान्त
21.निदर्शना	22.व्यतिरेक	23.सहोक्ति	24.विनोक्ति	25.समासोक्ति
26.अप्रस्तुतप्रशंसा	27अर्थान्तरन्यास	28.परिकर	29.पर्यायोक्त	30.अनुमान
31.आक्षेप	32.विशेषोक्ति	33.विरोध	34.विषम	35.कारणमाला
36.मालादीपक	37.एकावली	38.यथासंख्य	39.पर्याय	40.परिसंख्या
41.अर्थापत्ति	42.प्रतीप	43.स्वभावोक्ति	44.उदात्त	

अभिराजयशोभूषणम् में वर्णित कतिपय प्रमुख अलंकारों को उद्घाटित करना प्रस्तुत शोध – पत्र का मुख्योद्देश्य है। जो अधोलिखित हैं –

क) पुनरुक्तवदाभास

भासते पुनरुक्त्येवाऽपाततोऽर्थो हि यत्र सः।
पुनरुक्तवदाभासोऽसौ भिन्नाकृतिशब्दभाक्।।[4]

अर्थात् जहां अर्थ पुनरुक्ति के द्वारा भासित सा प्रतीत होता है, तथा भिन्न आकृति वाले शब्दों का आश्रय लेता है वह पुनरुक्तवदाभास अंलकार कहा जाता है। अभिराजयशोभूषणकार ने इसे अपने स्वरचित पद्य में सुस्पष्ट किया है। जैसे –
उदाहरण –

स्मरमित्रवसन्तेऽस्मिन् कलकण्ठपिकाऽऽरवैः।
दूरकान्तावियोगिन्यस्ताम्यन्त्येव दिवानिशम्।।

अर्थात् काम के मित्रभूत इस बसन्त ऋतु में रसीले कण्ठ वाले कोकिलों के कूजन से प्रोषित पतियों वाली वियोगिनियां रात – दिन सन्तप्त हो रही हैं।

प्रस्तुत उदाहरण में स्मरमित्र तथा वसन्त में, कलकण्ठ तथा पिक में, दूरकान्ता तथा वियोगिनी (शब्द – युगल) में आपाततः पौनरुक्त्य भासित हो रहा है। अतः यह पुनरुक्तवदाभास अलंकार का उदाहरण है।

ख) अनुप्रास अलंकार

शब्दसाम्यमनुप्रासो विषमेष्वपि स्वरेषु यत्।
छेकादिभेदभिन्नोऽसौ बहुरूपो निगद्यते।।[5]

जिसमें स्वरों की विषमता रहने पर भी शब्द – साम्य हो वह अनुप्रास अलंकार कहा जाता है, जो छेकादि भेदों से विभक्त अनेक रूपों वाला बताया गया है। जो अभिराजयशोभूषणम् में वर्णित इस उदाहरण से स्पष्ट है। यथा –

ह्रद्यं हारि हरिप्रियं हितकरं हैयग्वीनं हृदि
प्रीतं पूततम/ गाग्सलिलं नेत्रद्वये राजते।
वीणानादझरी यदीयवदने श्रान्तेव विश्राम्यति
सोऽयं वागुपलालितो विजयते राजेन्द्रमिश्रोऽन्तिमः।।[6]

अर्थात् जिसके हृदय में ह्रद्य (मनोरम) हारि (आकर्षक) हरिप्रिय (भगवान् कृष्ण को प्रिय) तथा हितकर (स्वास्थ्यवर्धक) हैयग्वीन (नवनीत) विद्यमान है तथा जिसके नेत्रयुगल में प्रीतिवर्धक, पवित्रतम गंगाजल (अश्रु) छलकता है और जिसके मुंह में वीणानाद की लहरी श्रान्त हुई सी विश्राम करती है, भगवती सरस्वती द्वारा उपलालित वह राजेन्द्र मिश्र (अब) अन्तिम कवि के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।
उपर्युक्त उदाहरण में ह्रद्य, हारि, हरिप्रिय, हितकर, हैयग्वीनादि शब्दों में स्वरों की विषमता रहने पर भी शब्द – साम्य दिखलाई पडता है। अतः यह अभिराजयशोभूषणकार द्वारा प्रतिपादित अनुप्रास अलंकार का उदाहरण है।

ग) यमक अलंकार

सकृमेणैवावृत्तिः स्वरव्यञ्नसंहतेः।
सत्यर्थे पृथगर्थाया यमकं तन्निगद्यते।।[7]

अर्थात् अर्थ के विद्यमान रहने पर भी, जिसमें पृथक् अर्थ वाली स्वर–व्यञ्न संहति की, समान क्रम से आवृत्ति हो तो यमक अलंकार होता है। उदाहणार्थ ''जानकीजीवनम्'' महाकाव्य का यह पद्य –

विकचपाटलपुष्पकदम्बकं ह्युपरिसारितकटणपाणिना।
मुकुलजालमुपेक्ष्य विचिन्वती वरतनू रतनूपुरका बभौ।।[8]

कंगन को उपर खिसका कर हाथ से, कच्ची कलियों के गुच्छों को छोडकर पूर्णविकसित पाटल – पुष्प के समूह को तोडती हुई, रुनझुन बिछुओं वाली कोई सुन्दरी दिखाई पडी।
उपर्युक्त उदाहरण में ''रतनू'' 'रतनू' में विद्यमान स्वर–व्यञ्न संहति पृथक् अर्थ वाली है। दोनों आवृत्तियों में इसकी समान क्रम से आवृत्ति हुई है।

घ) वक्रोक्ति अलंकार

यत्र श्लेषेण काक्वा वा वाक्यमन्यस्य गृह्यते।
अन्यार्थमन्यथा सैषा वक्रोक्तिर्द्विविधा मता।।[9]

जहां दूसरे द्वारा कहा गया अन्य अर्थ वाला वाक्य श्रोता द्वारा श्लेष अथवा काकु के द्वारा अन्य प्रकार से ग्रहण किया जाता है, वहां वक्रोक्ति अलंकार होता है। जो दो प्रकार का होता है – श्लेष वक्रोक्ति, काकु वक्रोक्ति। उदाहरण जैसे अभिराजयशोभूषणकार की विद्योत्तमा नाटिका का यह पद्य –

यास्याम्यन्यत एव, भामिनि ! कथं गन्तुं क्व सन्धीयते
यत्राऽप्यस्तु भुजग्को न कुटिलो, दन्तैर्न दष्टम्मया।
किं दंशैर्विषमूर्च्छितां प्रकुरुते स्पृष्ट्वैव भोगी चिरं
निश्चिन्ता भव कालकूटहरणी त्व/ासि विद्योत्तमा।।[10]

मैं कहीं और चली जाती हूं। देवि ! क्यों ? कहां जाने की सोच रही हो ? जहां पर कुटिल आचरण वाला कोई लम्पट न हो। मैने तो तुम्हें विषदन्तों से डंसा नहीं। डंसने की क्या जरूरत ? भोगी तो संस्पर्श मात्र से चिरकाल के लिये विषमूर्छित सी बना देता है। तुम निश्चिन्त रहो तुम्हारे साथ ऐसा नहीं होगा क्योंकि तुम तो कालकूट का प्रभाव नष्ट करने वाली उत्तम विद्या हो। प्रस्तुत पद्य में नायिका विद्योत्तमा द्वारा कहे गये श्लेष परक शब्दों जैसे – भुजंग, दंश, भोगी, विद्योत्तमादि को देवदत्त अन्य अर्थ में ग्रहण कर रहा है।

ङ) उपमा अलंकार

वैधर्म्यरहितं साम्यं यत्र वाच्यं क्वचिद् द्वयोः।
वाक्यैक्ये सोपमा पूर्णा चतुरग्समन्विता।।[11]

जहां एक ही वाक्य में दो वस्तुओं का वैधर्म्य – रहित साम्य वाच्य हो, वहां उपमा अलंकार होता है। चार अगें से समन्वित उपमा पूर्णोपमा कही जाती है। चतुरग् समन्विता अर्थात् सामान्य धर्म, वाचक शब्द, उपमेय तथा उपमान इन चारों से युक्त। उपमा का उदाहरण जैसे ''बच्चूलाल अवस्थी'' रचित ''प्रतानिनि'' का यह पद्य–

दूर्वेव प्रतिपर्व रोहतितरां दुग्धे सुधाधेनुवद्
रम्भेव प्रतिपत्रपत्रितगतिः सुस्वादु पम्फुल्यते।
मातेव प्रतिपालयत्यरिजने सिंहीव जागृज्यते
सेयं संस्कृतभारती सुमनसां सम्मानसे सज्जताम्।।[12]

जो दूर्वा के समान पोर – पोर कन्दलित होती है, अमृतदात्री कामधेनु के समान दुही जाती है, रम्भा (कदली) के समान प्रतिपत्र गतिशील है तथा स्वादिष्ट फल देने के लिए बार – बार पुष्पित होती है, जो जननी की तरह पालन – पोषण करती है और शत्रुओं को देख सिंही की तरह बार – बार गर्जना करती है। वह संस्कृत भाषा सहृदयों के सम्यक् मानस में शोभा प्राप्त करे।
उपर्युक्त पद्य में 'संस्कृतभारती' उपमेय है। दूर्वा, सुधाधेनु, रम्भा, सिंही तथा माता उपमान हैं। रोहण – दोहन, फुल्लन, प्रतिपालन, गर्जन आदि साधारण धर्म हैं तथा इव – वत् आदि वाचक शब्द हैं। अतः यह पूर्णोपमा का उदाहरण है।

च) अनन्वय अलंकार

अनन्वयोऽसौ यत्र स्यादेकस्यैव हि वस्तुनः।
उपमेयोपमानत्वं वाक्येऽप्यपरिवर्तिते।।[13]

अपरिवर्तित अर्थात् एक ही वाक्य में एक ही वस्तु का उपमेयत्व भी हो उपमानत्व भी, उसे अनन्वय अलंकार कहते हैं। उदाहरणार्थ जैसे अभिराजयशोभूषणम् का यह पद्य –

राजीवमिव राजीवं चन्द्रश्चन्द्र इवाऽमलः।
जाह्नवी जाह्नवीवाऽसौ त्वमिव त्वमसि प्रिये।।

अर्थात् कमलपुष्प कमलपुष्प के ही समान है, चन्द्र चन्द्र के ही समान निर्मल है। वह भगवती जाह्नवी भी जाह्नवी जैसी हैं। हे प्रिये ! तुम भी तुम्ही हो। प्रस्तुत पद्य में कमलपुष्प, चन्द्र, जाह्नवी आदि शब्द उपमेयत्व – उपमानत्व के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। अतः यह अनन्वय अलंकार का उदाहरण है।

छ) स्मरण अलंकार

सदृशोऽसदृशाद्वापि जायतेऽनुभवादिह।
वस्तुनो या स्मृतिस्तद्वै स्मरणं विनिगद्यते।।[14]

समान अथवा असमान अनुभव द्वारा किसी वस्तु की जो स्मृति होती है उसी को स्मरण अलंकार कहते हैं। असदृश अनुभवजन्य स्मरण का उदाहरण, जैसे ''राधावल्लभ त्रिपाठी'' प्रणीत अद्यापिलहरी का यह अधोलिखित पद्य –

अद्यापि मे स्मृतिपथं सहसा प्रयान्ति
गाढान्धकारघनजालतडित्प्रभाभाः।
ते अऽध्यापकाः प्रतिभया परितोष्यमाणा
शिष्यात्पराजयमपि स्वजयं वदन्तः।।[15]

प्रगाढ अन्धकार के सघन समूह में विद्युत्प्रभा के समान, छात्रों की प्रतिभा मात्र से परितुष्ट होने वाले न कि दक्षिणादि से तथा शिष्य से प्राप्त पराजय को भी अपनी विजय घोषित करने वाले, वे उपाध्याय सहसा मेरे स्मृतिपथ में आते हैं।

ज) सन्देह अलंकार

प्रकृतेऽप्युपमानस्य जायते यो हि संशयः।
कविप्रतिभयोत्थोऽसौ सन्देहो विनिगद्यते।।[16]

उपमेय में जो उपमान का संशय उत्पन्न होता है, कविप्रतिभा से समुत्थित वही सन्देह अलंकार कहा जाता है। उदाहरण के रूप में ''जगन्नाथ पाठक'' की 'कापिशायनी' का यह पद्य

गगनं मधुवेश्म किं शशी मधुकुम्भः किमयं समुद्गतः?
उडवः किमिमे च पायिनो निपतन्तः क्वचिदुत्थिताः क्वचित्।।[17]

क्या आकाश ही मदिरालय है? यह समुदित चन्द्र ही क्या मधुकलश है ? ये तारे ही मधुपायी लोग हैं जो कभी लडखडा कर गिरते हैं और कभी संभलकर उठते हैं ?
यहां प्रकृत उपमेय में अन्य उपमान का संशय कविप्रतिभाजन्य है। अतः यह सन्देह अलंकार का उदाहरण है।

झ) तुल्ययोगिता अलंकार

प्रस्तुतानां पदार्थानामन्येषां वा यदा भवेत्।
एकधर्मेण सम्बन्धः सोच्यते तुल्ययोगिता।।[18]

प्रस्तुत पदार्थों का, अथवा अन्यों का भी जब एक ही धर्म से सम्बन्ध हो तो उसे तुल्ययोगिता कहते हैं। जो अभिराजयशोभूषणम् के इस पद्य से स्पष्ट है। जैसे –

कान्तासंस्पर्शशैतल्यवेदिनो हृदि कस्य नो।
उष्णतोशीरपाटीरमुक्तामलयमारुताम्।।

प्रियतमा के अंग – संस्पर्श की शीतलता का अनुभव कर चुके भला किसके हृदय में उशीर (खस) पाटीर (चन्दन) मुक्ता एवं मलयमारुत की उष्णता की प्रतीति नहीं होती ?

उपर्युक्त उदाहरण में खस, चन्दन, मोती तथा मलयपवन रूप समस्त अप्रस्तुतों का उष्णतारूप एक ही धर्म से सम्बन्ध बताया गया है। अतः यह पद्य तुल्ययोगिता का उदाहरण है।

अलंकारों के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि अर्वाचीन संस्कृत काव्यशास्त्र में अभिराजयशोभूषणकार अभिराजराजेन्द्र मिश्र ने अपने (अभिराजयशोभूषणम् नामक) इस लक्षण ग्रन्थ में सरस एवं सरल सहृदयों को आनन्दित करने वाले अलंकारों को नूतन रूप में व्यवस्थित कर अभिराजयशोभूषणम् में उद्घाटित किया है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. नाट्यशास्त्र, भरत, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1978।
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन, अर्चना श्रीवास्तव, वि.वि. प्रकाशन, वाराणसी, 1991।
3. अभिराजयशोभूषणम, राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006।
4. कविसम्मेलनम् लघुनाटकम्, राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. जानकीजीवनम्, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988।
6. विद्योत्तमा नाटिका, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014।
7. प्रतानिनि, बच्चूलाल अवस्थी, वैजयन्ती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996।
8. अद्यापिलहरी, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली,।
9. कापिशायिनी, जगन्नाथ पाठक, गंगानाथ झा केन्द्रीय विद्यापीठ, इलाहाबाद, 1980
10. संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र,राजेन्द्र मिश्र,वि.वि. प्रकाशन, वाराणसी, 2010।

सन्दर्भ–संकेत

1. नाट्यशास्त्र, भरत, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1978.
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन। पृ. 30
3. शब्दार्थसंश्रिता ये वै काव्यशोभां प्रतन्वते।
   हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।
   अभिराजयशोभूषणम्, उन्मेष.2,कारिका. 91
4. अभिराजयशोभूषणम, 2.99।
5. अभिराजयशोभूषणम, 2.100।
6. कविसम्मेलनम् लघुनाटकम्।
7. अभिराजयशोभूषणम, 2.102।
8. जानकीजीवनम्, षष्ठ सर्ग–श्लोक–6
9. अभिराजयशोभूषणम, 2.103।
10. विद्योत्तमा नाटिका।
11. अभिराजयशोभूषणम, 2.105।
12. प्रतानिनि।
13. अभिराजयशोभूषणम, 2.108।
14. अभिराजयशोभूषणम, 2.110।
15. अद्यापिलहरी, 1.29 ।
16. अभिराजयशोभूषणम, 2.112।
17. कापिशायिनी।
18. अभिराजयशोभूषणम, 2.119।
19. अभिराजयशोभूषणम्, पृ.114 ।
20. अभिराजयशोभूषणम, 2.119 ।
21. अभिराजयशोभूषणम्, पृ.120 ।